RNI : 66866/97

विश्व दीप दिव्य सन्देश

(मासिक शोध पत्रिका)

संरक्षक : सार्वभौम जगतगुरु, महामण्डलेश्वर परमहंस योगीराज श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी

वर्ष–24 विक्रम संवत् – 2076 (फरवरी–2020) अंक–2

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

RNI : 66866897

विश्व दीप दिव्य संदेश

(मासिक पत्रिका)

वर्ष – 24 | विक्रम संवत् – २०७६ | अङ्क–2 | फरवरी, 2020

* प्रमुख संरक्षक *

परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी

परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

* प्रेरणास्रोत *

भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

* संस्थापक *

परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

* संरक्षक *

सार्वभौम जगद्गुरु महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी

* परामर्शदाता *

पण्डित अनन्त शर्मा

डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर

* प्रधान संपादक *

महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

* संपादक *

सोहन लाल गर्ग

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

* सह–संपादक *

डॉ. रामदेव साहू

डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा

तिबोर कोकेनी

श्रीमती अन्या वुकादिन

* सहयोग *

डॉ. योगेश कुमार, नवीन जोशी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोडाला, जयपुर

website : vgda.in, Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram

Email : jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

	सम्पादकीय		3
1.	उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति तथा उपयुक्त शिक्षण पद्धति	डॉ. कुलदीप सिंह	5
2.	व्यञ्जनवर्णा:	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	9
3.	काव्य एवं काव्य भेद	डॉ. प्राची गौड़	11
4.	मणिजा नाम के आर्यों की सभ्यता का युग	खुशबू कुमारी	20
5.	विचारों एवं विकारों का चक्रव्यूह	संकलन : धीरेन्द्र स्वामी	22
6.	आओ दुआएँ लेते चलें	करतार योगी	25
7.	वैशेषिकसम्मत भक्ति मीमांसा	विनोद	26
8.	नीम का पेड़	नवीन जोशी	30
9.	''अन्ताराष्ट्रिय वैदिक संस्कृति व्याख्यान माला'' के व्याख्यानों का विवरण		31

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण : **आइडियल कम्प्यूटर सेन्टर**,3580 मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ❊ मो. 9829028926

सम्पादकीय

विश्व गुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोध पत्रिका का चतुर्थ पुष्प आपके कर कमलों में देते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस मासिक पत्रिका के तीन अंक पूर्व में प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय धर्म संस्कृति के शोध लेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। नियमित विद्वानों द्वारा भेजे जा रहे शोध लेख हमारा मनोबल बढा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं व शोध संस्थान द्वारा किये गये कार्यक्रमों के चित्र सहित विवरण प्रकाशित किया गया है।

प्रकाशन की इसी परम्परा में कुछ नये आयामों को और जोड दिया गया है, जिसमें संस्था, विद्यावाचस्पती समीक्षाचक्रवर्ति पं. मधुसूदन ओझा के अप्रकाशित साहित्य को सानुवाद प्रकाशित करने का कार्य भी कर रहा है।

प्रत्येक रविवार को अन्तर्राष्ट्रिय वैदिक संस्कृति व्याख्यानमाला की शुरुआत पिछले एक वर्ष से हो रही है। विश्वस्तरीय विद्वानों द्वारा अति महत्वपूर्ण व्याख्यानों का प्रकाशन व प्रसारण भी किया जा रहा है। विभिन्न संगोष्ठी सेमीनार व जन्ममहोत्सवों के आयोजन अवसर पर किये गये संस्था द्वारा कार्य प्रकाशन, प्रसारण की सम्पूर्ण सूचनार्थ प्रत्येक माह इस पत्रिका के माध्यम से सुधीजनों तक पहुँचाने का यथासम्भव कार्य हमारे द्वारा किया जा रहा है।

इस अंक में प्रकाशित समस्त लेख प्राच्यनक विद्वानों का एक संगम है। आशा है सुधीजन इस ज्ञान गंगा का पान पूर्ण मनोयोग के साथ करेंगे।

आप सभी को शुभकामना व आगामी लेखों के लिए आग्रह के साथ।

–सम्पादक

मासिक रिपोर्ट (विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर)

(फरवरी-2020)

कार्यक्रम	शिविर	कार्यशाला	प्रकाशन	व्याख्यान-प्रस्तोता-दिनांक-विषय
	21 दिवसीय ज्योतिष एवं वास्तु प्रशिक्षण शिविर समापन समारोह समारोह – 16.02.2020			प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा – व्याख्यानमाला – 02.02.2020 – धौम्य गीता। पं. अनन्त शर्मा – व्याख्यानमाला – 02.02.2020 – वेद ही धर्म है। पं. अनन्त शर्मा – व्याख्यानमाला – 11.02.2020 – भारतीय संस्कृति में संकल्प का महत्व। पं. अनन्त शर्मा – व्याख्यानमाला – 23.02.2020 – विवाह में संकल्प।

उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति तथा उपयुक्त शिक्षण पद्धति

डॉ. कुलदीप सिंह

शिक्षा अज्ञानान्धकारं दूरीकृत्य ज्ञानदीपं प्रज्वालयति।[1]

शिक्षा का वास्तविक अर्थ है सर्वांगीण विकास। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक तथा सामंजस्य पूर्ण विकास संभव है। व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के द्वारा शिक्षा ही व्यक्ति को वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने में समर्थ बनाती है। साथ ही उसके आचार-विचार-व्यवहार तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन की प्रेरणा प्रदान करती है।

The highest education is that which makes our life in harmony with all existence. - rabindranath Tagore.

शिक्षित एवं उत्तर दायित्व के निर्वहन में अग्रणी नागरिक ही एक विकसित एवं सभ्य राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। इसमें शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। राष्ट्र का विकास प्रमुखतया समाज में शिक्षा की प्रकृति पर निर्भर करता है। राष्ट्र निर्माण में जहां प्राथमिक शिक्षा एक आधार के रूप में कार्य करती है तो वहीं उच्च शिक्षा तीक्ष्णता एवं कुशलता प्रदान करती है। विशेष रूप से प्रशिक्षित, विभिन्न विधाओं में पारंगत, ज्ञानी तथा कुशल नागरिकों के निर्माण द्वारा उच्च शिक्षण संस्थान राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देते हैं। उच्च शिक्षा एक सूचना आधारित समाज हेतु ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्र की छवि एवं स्वरूप के निर्धारण में भी उच्च शिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक है।

भारत में उच्च शिक्षा का स्वरूप

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत विश्व की तीसरी सबसे विशाल एवं व्यापक उच्च शिक्षा प्रणाली धारण करता है। प्राचीन समय में शिक्षा प्रणाली गुरुकुल आधारित थी। स्वतंत्रता के उपरांत शिक्षा राज्यों का दायित्व बन गई। 1976 के बाद से शिक्षा राज्य एवं केंद्र का संयुक्त उत्तरदायित्व है। उच्च शिक्षा के विस्तार एवं गुणवत्ता को सुनिश्चित करने हेतु केंद्र सरकार द्वारा कई उच्च शिक्षा नियामक संस्थाओं की स्थापना की गई जो विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित उच्च शिक्षण संस्थानों में शोध एवं नवाचारों को प्रोत्साहन देती है। भारत में स्वतंत्रता पश्चात उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व बृद्धि हुई है। जहां 1950 में मात्र 20 विद्यालय थे वहीं 2014 में यह संख्या बढ़कर 677 हो गई है। महाविद्यालयों की संख्या में भी 74 प्रतिशत वृद्धि हुई है। 1950 में महाविद्यालयों की संख्या 500 थी जो 2013 में 37,204

हो गई है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति इस प्रकार है–

1. विश्वविद्यालयों की संख्या-851
2. महाविद्यालय की संख्या- 41012
3. उच्च शिक्षा में नामांकन दर (18 से 23 आयु समूह के)-25.8%
4. पुरुष नामांकन दर-26.3%
5. महिला नामांकन दर-25.4%
6. नामांकित छात्रों की संख्या- 366.42 लाख
7. शिक्षकों की संख्या- 1284957
8. विद्यावारिधि की उपाधि प्राप्त छात्र- 34400
9. विद्यानिधि उपाधि प्राप्त छात्र- 28059
10. राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद द्वारा ग्रेड प्राप्त केंद्रीय विश्वविद्यालयों की संख्या- 40 में से 35 विश्वविद्यालयों को NAAC ग्रेड प्राप्त।

स्रोत- ऑल इंडिया सर्वे आफ हायर एजुकेशन (AISHE) कि 2017 -18 रिपोर्ट।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 2017-18 में यूजीसी को उच्च शिक्षा पर व्यय हेतु 12805.46 करोड़ रु का अनुदान दिया गया।

गुणवत्ता की सुनिश्चितता

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सदैव एक चिन्तन का विषय रही है। सरकार के द्वारा केन्द्र व राज्य स्तरीय उच्च शिक्षण संस्थानों को पर्याप्त अनुदान दिया जा रहा है इसके बावजूद गुणवत्ता का प्रश्न यथावत है। यद्यपि यूजीसी द्वारा गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु संस्थानों में गुणवत्ता मूल्यांकन इकाइयों की स्थापना की गई है साथ ही University with potential for excellence जैसी योजनाएं भी चलाई जा रही है। परंतु उच्च शिक्षा तब तक अपना उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सकती जब तक कि वह वर्तमान समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को प्रासंगिक ना बना ले। सरकार के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है कि उच्च शिक्षा के इस तीव्रतर विस्तार में गुणवत्ता से समझौता ना हो। उच्च शिक्षा में गुणात्मक उन्नयन मुख्यतः आधारभूत सुविधाओं, पाठ्यक्रम तथा शिक्षकों से संबद्ध है। गुणात्मक परिवर्तन के इस लक्ष्य को उपयुक्त विषय सामग्री, व्यक्तिगत विकास, संस्थागत संस्कृति, समूह कार्य तथा उपयुक्त शिक्षण विधियों व पद्धतियों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

शिक्षक की भूमिका

चारित्रिक विकास तथा श्रेष्ठ चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता

है। अतः राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षक वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं की योग्यता को बढ़ाएं तथा राष्ट्रीय और वैश्विक अपेक्षाओं के अनुरूप छात्र के व्यक्तित्व का निर्माण करें ताकि वह राष्ट्र की उन्नति में अपना योगदान दे सकें। शिक्षक की विशेषता बताते हुए महाकवि कालिदास कहते हैं–

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था, संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरी प्रतिष्ठापयितव्य एव।।[2]

श्रेष्ठ शिक्षक वही है जिन्हें विषय की गहरी समझ हो साथ ही जो अपने अर्जित ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ तरीके से छात्र तक संप्रेषित कर सके।

उच्च शिक्षा में शिक्षक का प्रमुख कार्य एक ऐसे अधिगम वातावरण का निर्माण करना है जिसमें कि छात्र तर्कसंगत रूप से विचार करने तथा समालोचनात्मक रूप में उन्हें अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सके।

उच्च शिक्षा की शिक्षण पद्धतियां

शिक्षण पद्धति या विधि में शिक्षण आव्यूहों व युक्तियों दोनों का समावेश होता है जिसका अनुसरण कर अध्यापक अधिगम को रोचक, आसान व प्रभावपूर्ण बनाता है। विधि परिणाम की गुणवत्ता निर्धारित करती है। शिक्षण विधि के महत्व को स्पष्ट करते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने यह विचार प्रकट किया सर्वोत्तम पाठ्यचर्या तथा परिपूर्ण पाठ्यक्रम भी तब तक निष्क्रिय रहता है जब तक कि इसे शिक्षण की सही विधियों तथा सही प्रकार के अध्यापकों द्वारा जीवन्त ना किया जाए।

वर्तमान में उच्च स्तर पर शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य हैं–

1. ज्ञान प्रदान करना।
2. प्राप्त ज्ञान को प्रयोग करने की क्षमता विकसित करना।
3. सूचना एवं ज्ञान के परीक्षण की क्षमता विकसित करना।
4. नवीन ज्ञान निर्माण की योग्यता विकसित करना।
5. व्यक्तिगत विकास के अवसर देना।
6. स्वयं के अधिगम को नियोजित एवं व्यवस्थित करने की क्षमता विकसित करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्न शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है

1. समस्या समाधान विधि
2. आगमन विधि
3. निगमन विधि
4. व्याख्यान विधि
5. दत्त कार्य विधि
6. प्रोजेक्ट विधि
7. कार्यशाला विधि

गुणात्मक उन्नयन हेतु उपयुक्त शिक्षण पद्धति–

सूचना एवं संचार तकनीकी एवं वैश्वीकरण में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अत्यधिक गति प्रदान की है। अतः उच्च शिक्षा में गुणात्मक एवं वर्तमान समय की अपेक्षाओं के अनुरूप सुधार हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षण हेतु उपयुक्त पद्धतियों का प्रयोग किया जाए। मुक्ता अधिगम पद्धति, समूह कार्य पद्धति, एवं प्रोजेक्ट विधि इसमें सहायक सिद्ध हो सकती है।

उच्च शिक्षा में मुक्त अधिगम विधि के अंतर्गत सरकार द्वारा SWAYAM² (Study Webs of Active Learning for Young Aspiring Minds) को प्रस्तुत किया गया है। यह मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा विकसित है। इसमें 2000 पाठ्यक्रमों, 80000 घंटों का अधिगम सम्मिलित हैं जो की स्नातक, स्नातकोत्तर, अभीयांत्रिकी तथा अन्य व्यवसायिक पाठ्यक्रमों का संचालन करता है। स्वयम् SWAYAM में वीडियो, ट्यूटोरियल्स, ई सामग्री, स्व मूल्यांकन व विचार विमर्श का समावेश किया गया है। इसी प्रकार SWAYAM PRABHA जो 32 शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों का एक समूह है वह UGC, CEC, IGNOU, NCERT, NIOS आदि के द्वारा तैयार विभिन्न पाठ्यक्रमों पर आधारित लिखित सूचना एवं सामग्री का प्रसारण करता है। इसी प्रकार सक्रिय अधिगम पद्धति जिसमें अधिगम का संपूर्ण उत्तरदायित्व छात्र पर होता है, तथा समस्या समाधान पद्धति जिसमें समस्या के संभावित समाधानों का अन्वेषण करते हुए छात्र अधिगम करता है भी अत्यधिक महत्व रखती है।

उपर्युक्त शिक्षण पद्धतियां छात्र को ज्ञान के परीक्षण की क्षमता प्रदान करती है तथा अधिगम में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करती है। साथ ही छात्र को नवीन ज्ञान निर्माण में सक्षम बनाकर शिक्षा में गुणात्मक संवर्धन करती है।

सहायक आचार्य (शिक्षा) ज.रा.रा.संस्कृत विश्वविद्यालय
जयपुर (राज.)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. UGC Annual Report 2017-18
2. MHRD Website
3. School Management and Pedagogics of Education- Dr. J.S.Walia
4. मालविकाग्निमित्रम्
5. Frazier, A. (1997) Road Map for Quality TQM IN in Education, St.Lucie Press, Florida.
6. शिक्षायाः दार्शनिकाधाराः- सोमनाथ

सन्दर्भ–

1. ऋग्वेद, सप्तम मण्डल

व्यञ्जनवर्णाः

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

माहेश्वरमतेनाथ व्यञ्जनानि तु संख्यया।
द्विचत्वारिंशदुक्तानि तेषां विश्लेषणं त्विदम्।।1।।

कवर्गादिपवर्गान्ता स्पर्शाख्याः पविंशतिः।
वर्गेषु प्रतिवर्गं ये प प व्यवस्थिताः।।2।।

अन्तःस्थाश्चापि चत्वारः चत्वारश्चोष्मसंज्ञिताः।
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च।।3।।

उपध्मानीयकश्चाथ चत्वारश्च यमाःस्मृताः।
दुःस्पृष्टोऽपि लकारश्च द्विचत्वारिंशदित्यमी।।4।।

कवर्गः कखगघङाः चवर्गश्चछजझञाः।
टवर्गः टठडढणाः तवर्गस्तथदधनाः।।5।।

पवर्गः फफबभमाः अन्तःस्था स्युर्यरलवाः।
उष्माणः शषसहाः स्युः ते निखिले हल् संज्ञिताः।।6।।

अँ इति स्वरशीर्षस्थो बिन्दुरूपेण लिख्यते।
नासिकातः समुच्चार्यो वर्णोऽनुस्वार उच्यते।।7।।

अः इः इति स्वराग्रे तु लेख्यो बिंदुद्वयात्मकः।
हहादिहुहेहो एवम् उच्चार्यस्तु विसर्गकः।।8।।

क ख इति कखाभ्यां प्राक् लेख्यो योऽर्ध विसर्गवत्।
जिह्वामूलीयवर्णोऽर्धं कखवदुच्चार्यते च सः।।9।।

प फ इति पफाभ्यां प्राक् लेख्यो योऽर्धविसर्गवत्।
उपध्मानीयवर्णः स योऽर्धं प फ वदुच्यते।।10।।

हयवरट्लण् इत्यादि हल् सूत्रावधिकं पुनः।
शिवसूत्राणि सर्वाणि व्यञ्जनान्युल्लिखन्ति हि।।11।।

तदनुसृत्य संक्षिप्तःप्रत्याहारेति संज्ञया।
व्यञ्जनान्यपि सूच्यन्ते संज्ञाभिर्हल्झलादिभिः।।12।।

हलः शलो वलो रलो यरः खरश्चरो झरः।
यञो झयः खयो ययो मयश्चयो ङमो यमः।।13।।

झषो जशो भशो बशः झशो झलो यणो हशः।
शरश्छवो वशश्चेति व्यवहारो हलां भवेत्।।14।।

प्राचार्यचरः,
श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर

काव्य एवं काव्य भेद

डॉ. प्राची गौड़

'काव्य' कली का सर्वोत्कृष्ट रूप होता है। पाश्चात्य मनीषी भले ही कहते फिरें कि 'कला, कला के लिए हुआ करती है।' अर्थात् उसमें कलाकार को जीवन का वास्तविक चित्र मात्र खींच देना है, उससे आगे नहीं जाना है, किन्तु भारतीय साहित्यकार कभी भी यह मानने को तैयार नहीं हैं। भारतीयों की दृष्टि में समाज के यथातथ्य चित्र के साथ-साथ उसके उत्थान हेतु उच्च आदर्शों की संस्थापना तथा मानवमूल्यों की रक्षा को भी काव्य का अपरिहार्य अंग समझा जाता है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र जी के शब्दों में - ''कला वह है, जिसमें जीवन का सौन्दर्य हो, सृजन की आत्मा हो, जो हम लोगों में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं।'' काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने यश, धनप्राप्ति, व्यवहारज्ञान तथा सद्यः परमानन्द-प्रतीति के साथ-साथ शिवेतरक्षति (विघ्नध्वंस) को जीवन का शिव-निर्माण या भव्य-आदर्श बताया है। आदर्श का यह उपदेश, काव्य में वेदवाक्यों के समान अनुल्लङ्घ्य अध्यादेश के रूप में (प्रभुसम्मित) नहीं होता है, प्रत्युत 'कान्तासम्मिततया' होता है, अर्थात् - जिस प्रकार कान्ता (कामिनी) अपने प्रियतम को कटाक्ष, भुजक्षेप आदि मधुर हाव-भावों के साथ सरसता उत्पन्न करके, उसे अपने अनुकूल बनाती हुई, अभीष्ट-मार्ग की ओर उन्मुख करती है, उसी प्रकार काव्यकला-कामिनी भी शृंगारादि रसों के रमणीय प्रवाह से आनन्द का सृजन करती हुई, सहृदयों अथवा सामाजिकों को कल्याण की ओर अग्रसर करती हुई, यह शिक्षा देती है कि हमें राम आदि की तरह आचरण करना चाहिए, रावण आदि की तरह नहीं (रामादिवत् प्रवर्तितव्यम्, न रावणादिवदिति)।

'काव्य' वह औषधि है, जो बड़े-बड़े रोगों को सहज ही दूर करने में समर्थ है, यह वह अस्त्र है, जिसके सामने बड़े-बड़े योद्धाओं को घुटने टेकने पड़ते हैं, यह वह वशीकरण मन्त्र है, जिससे पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों को ही नहीं अपितु देवताओं को भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है–

काव्य–कला की कान्तिसे, कान्त होत सब लोग।
मिथिलाधिप वशवर्ति सब, होत कुयोग सुयोग।।

एक किंवदन्ती के अनुसार, राजा भोज की सभा में एक बार कोई दीन ब्राह्मण भोजन की भिक्षा माँगता हुआ जन-सामान्य की भाषा में निवेदन कर बैठा–

माहिषं च शरच्चन्द्र–चन्द्रिका–धवलं दधि।।

इस ललित-पदावली को सुनते ही राजा भोज मन्त्रमुग्ध हो गये और उस याचक-ब्राह्मण की कामना पूरी कर दी।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण महाकवि पण्डितराज जगन्नाथ के सम्बन्ध में सुना जाता है कि एक बार मुगल सम्राट शाहजहाँ के पास अन्तरङ्ग-सभा में पण्डितराज बैठे हुए थे और विद्या-सम्बन्धी चर्चा चल रही थी, इसी बीच पण्डितराज को प्यास की अनुभूति हुई और उन्होंने जल की इच्छा प्रकट की। शाही फरमान पर एक नवयुवती बाला सिर पर कलश लिए मटकती, छमछमाती हुई आ पहुँची और जल पिलाकर चील गयी। पण्डितराज ने पानी क्या पीया, उस पानी के बदले उस बाला को अपना हृदय दे बैठे। अपने हृदय के उद्गार को पण्डित रोक न सके और काव्य-कामिनी उनके हृदय से उठकर अधरामृत का पान करती हुई सम्राट् के श्रवणरन्ध्र तक जा पहुँची–

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्कुम्भा,
सुकुम्भारुणं चारु देहं वसाना।
समस्तस्य लोकस्य चेतः प्रवृत्तिं,
गृहीत्वा घटे न्यस्य यातीव भाति।।

पण्डितराज की इस मर्मस्पर्शी चमत्कारपूर्ण काव्यकला से सम्राट शाहजहाँ का हृदय गद्गद हो गया और बोल उठे– ''पण्डितराज! माँगो, क्या माँगते हो? हम तुम्हारी काव्यकला से मन्त्रमुग्ध है'' लेकिन पण्डितराज, पूर्वोक्त भोजराज के दरबार वाले ब्राह्मण की भाँति भोजनभिक्षु तो थे नहीं, वे अपने मन की मुराद को सम्राट के समक्ष प्रकट करते हुए पुनः अपनी काव्यकामिनी का विलास प्रस्तुत किए–

न याचे गजालिं न वा वाजिराज,
न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा,
लवङ्गी कुरङ्गी मदङ्गी करोतु।।

पण्डितराज की इस काव्य-कामिनी की मोहनी से मोहित सम्राट ने तुरन्त उस लवङ्गी बाला को बुलवाया और पण्डितराज के हाथों में समर्पित कर दिया। यह है, काव्य-कामिनी का जादू, जो साधारण जनभाषा के बोलचाल के शब्दार्थो में नहीं अपितु कविभाषा के शब्दार्थो में रहता है। इन्हीं शब्दार्थो को लक्ष्य करके आचार्य भामह ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा - ''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'' इस सम्बन्ध में आचार्य भामह ने स्वयं प्रश्न उठाकर उसका उत्तर भी दिया है–

गतोस्तमर्को भातीन्दुः यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादिकं काव्यं? वार्तामेतां प्रचक्षते।

अर्थात् - सूर्य छिप गया, चन्द्रमा चमक रहा है, पक्षीगण अपनें घोंसलों की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, इत्यादि शब्दार्थ क्या काव्य है? नहीं, यह तो सामान्य जनभाषा की बातचीत मात्र है।

ऐसी स्थिति में यह जिज्ञासा पैदा होती है कि काव्य वास्तविक स्वरूप क्या है? काव्यत्व के लिए किन गुणों का होना अनिवार्य है? इत्यादि। एतदर्थ कुछ प्रमुख काव्य परिभाषाओं (लक्षणों) को उपस्थापित किया गया है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

काव्य

लक्षण कौति कवते कवयति वा (कु+इ) कविः, तस्य कर्म काव्यम्।

अर्थात्-जो व्यक्ति शब्द करे अथवा मुख से शब्दों को निकाले, वह 'कवि' है और उसका कर्म 'काव्य' है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार, अर्थानुगत शब्दों को समुदाय 'काव्य' है। प्राचीनकाल से विभिन्न साहित्य-मर्मज्ञ आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से 'काव्य' को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। कुछ प्रमुख काव्य-परिभाषाओं (लक्षणों) का विवरण इस प्रकार है -

1. अग्निपुराणकार महर्षि व्यास के अनुसार –

संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम्।।

अर्थात् – संक्षिप्त, इष्ट अर्थ से युक्त, स्फुट अलंकार युक्त, गुणयुक्त तथा दोषरहित पदावली को 'काव्य' कहते हैं।

2. सरस्वतीकण्ठाभरणकार भोज के अनुसार–

अदोषं गुणवद् काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।

अर्थात् - दोषरहित, गुणसहित, अलंकार-विभूषित तथा रसान्वित वाक्य 'काव्य' कहा जाता है।

3. काव्यलङ्कार आचार्य भामह के अनुसार –

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।

अर्थात् - अर्थानुगत शब्दों के समुदाय को 'काव्य' कहते हैं। यह अर्थानुगत शब्द-समुदाय चमत्कारपूर्ण तथा कविप्रतिभाप्रकाशित होना चाहिए, अन्यथा वह 'वार्ता' मात्र होगा, जैसा कि आचार्य भामह स्वयं लिखते हैं -

गतोस्तमर्को भातीन्दुः यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादिकं काव्यं? वार्तामेतां प्रचक्षते।।

4. वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुन्तक के अनुसार –

वक्राक्तिः काव्यजीवितम्।

अर्थात् -वक्रोक्ति ही 'काव्य' है या काव्य का प्राणभूत है। आचार्य विश्वनाथ कविराज, कुन्तक की उपर्युक्त परिभाषा से सहमत नहीं है, उनका कहना है कि 'वक्रोक्ति' तो एक अलंकार मात्र है और अलंकार काव्य की आत्मा नहीं होता है, अपितु काव्य में केवल उत्कर्ष पैदा करता है।

5. काव्यादर्शकार आचार्य दण्डी के अनुसार –

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।

अर्थात् - इष्ट अर्थ से युक्त पदावली ही 'काव्य' है, परन्तु आचार्य दण्डी का मानना है कि यह 'काव्य' सर्वथा दोषमुक्त होना चाहिए। 'काव्य' में थोड़ा भी दोष उपेक्षणीय नहीं हैं, क्योंकि सुन्दर शरीर भी थोड़े कुष्ठदोष से दूषित हो जाता हैं -

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्यं दुष्टं कथञ्चन।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।

6. काव्यालंकारसूत्रकार आचार्य वामन के अनुसार –

रीतिरात्मा काव्यस्य।
विशिष्टपदरचना रीतिः।
विशेषो गुणात्मा।

अर्थात् - गुणालंकारयुक्त, सुन्दर शब्दार्थसमुदाय ही काव्य है तथा 'रीति' काव्य की आत्मा है, परन्तु आचार्य विश्वनाथ कविराज का मानना है कि 'रीति' तो संघटना (रचना) रूप है और संघटना, शरीर के अंगविन्यास के तुल्य होती है। अतः 'रीति' को 'काव्य' की 'आत्मा' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आत्मा तो सदैव शरीर से भिन्न होती है।

7. ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार –

ध्वनिरात्मा काव्यस्य।

अर्थात् - 'ध्वनि' ही 'काव्य' की आत्मा है। ध्वनि का तात्पर्य काव्य के प्राणभूत व्यंग्यार्थ से है।

ध्वनिकार की प्रस्तुत परिभाषा आचार्य विश्वनाथ कविराज को स्वीकार्य नहीं है। वे ध्वनिकार की तीखी आलोचना करते हुए कहते हैं कि यदि वस्तुमात्र के व्यंग्य होने पर काव्यत्व मानने लगें, तो 'देवदत्तो ग्रामं याति' (राजा देवदत्त गाँव को जाता है), इत्यादि वाक्य भी काव्य हो जायेंगे, क्योकिं इस वाक्य में भी देवदत्त के भृत्य का पीछे-पीछे जाना, ध्वनित हो रहा है।

8. रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार –

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

अर्थात् - रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्दसमुदाय ही 'काव्य' है। इस काव्य-लक्षण में पण्डितराज को रमणीयता से अभिप्रेत केवल रस ही नहीं है, अपितु अर्थ में रमणीयता लाने वाले रस से भिन्न और भी तत्त्वों का समावेश है, जिससे वर्णन में चमत्कार आ जाता है।

9. काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट के अनुसार –

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्यापि।

अर्थात् - दोषरहित, गुणसहित, सर्वत्र अलंकार सहित तथा स्फुटरसयुक्त स्थल में स्फुट अलंकाररहित भी शब्द और अर्थ को 'काव्य' कहते हैं।

इस सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ कविराज का कहना है कि सर्वथा दोषहीन काव्य का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। काव्य में किसी दोष की उपस्थिति से उस काव्य का मूल्य (कोटि) भले ही कम हो जाये, परन्तु उसका काव्यत्व नष्ट नहीं होता हैं, जैसे - कीटानुविद्ध रत्न का रत्नत्व नष्ट नहीं होता, केवल उसकी उपादेयता में अन्तर आ जाता है, ठीक उसी प्रकार श्रुतिकटुत्वादि दोष 'काव्य' के काव्यत्व को नष्ट नहीं कर सकते, केवल उसके उत्कर्ष में न्यूनता पैदा कर सकते हैं -

कीटानुविद्धरत्नादि–साधारण्येन काव्यता।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः।।

इसके अतिरिक्त कविराज के मत में 'शब्दार्थो' का 'सगुणौ' विशेषण भी उचित नहीं है, क्योंकि गुण केवल 'रस' में ही रहते हैं, शब्द और अर्थ में नहीं -

ये रसस्यांगिनो धर्माः सौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष–हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।

ध्यातव्य है कि यद्यपि आचार्य विश्वनाथ ने आचार्य मम्मट के प्रस्तुत काव्य-लक्षण का जोरदार खण्डन किया है, परन्तु तटस्थभाव से तात्त्विकदृष्टि से विचार करने पर यह खण्डन उचित नहीं लगता है। 'अदोषौ' तथा 'अनलंकृती' में ईषद् अर्थ में 'नञ्'। समास करने पर दोष-परिहार हो जाता है, लेकिन विश्वनाथजी को 'ईषद्' अर्थ भी अभिप्रेत नहीं है।

उदाहरण - स्फुट अलंकार से रहित काव्य का उदाहरण देते हुए आचार्य मम्मट लिखते हैं–

यः कौमारहरः स एव वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते,
चौन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौः,
रेवा–रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।।

अर्थात् - (कोई नायिका कहती है कि) जिसने मेरे कौमार्य का हरण किया है, वही मेरा पति है, वही चैत्र की रातें है, वही विकसित मालती-लताओं की सुगन्धित प्रौढ (रत्युद्दीपक) कदम्बपुष्प की हवाएं हैं तथा मैं भी वही हूँ, फिर भी वहाँ नर्मदा के तट पर वेत्रलता के नीचे कामक्रीड़ा के लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।

यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है तथा स्फुटरूप से कोई अलंकार नहीं है, फिर भी यह उदाहरण सर्वथा काव्य कहलाने का अधिकारी है। ध्यातव्य है कि आचार्य विश्वनाथ कविराज ने यहाँ भी खींचतान कर 'विभावना' और 'विशेषोक्ति' अलंकार मानने का प्रयास किया है।

10. साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज के अनुसार –

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

अर्थात् - रसात्मक वाक्य को 'काव्य' कहते हैं। प्रस्तुत लक्षण में 'रसात्मकम्' और 'वाक्यम्, ये दो पद दिये गये हैं, इनमें आसत्ति, योग्यता तथा आकांक्षा से युक्त पद समूह को 'वाक्य' कहते हैं, जबकि 'रसात्मक' का अभिप्राय है, - 'रस एवात्मा साररूपतया जीवनधायको यस्य।' अर्थात् - ऐसा वाक्य, जिसका प्राणभूत (आत्मा) रस हैं, उसको 'रसात्मक' कहते हैं। यहाँ पर 'रस' का अभिप्राय है- 'जो आस्वादित होता है, उस सबको 'रस' कहते हैं - रस्यते इति रसः। इससे - (1) रस, (2) रसाभास (3) भाव तथा (4) भावाभास का भी ग्रहण होता है।

उदाहरण -

(1) रस विषयक –

शून्यं वासगृहं शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै,
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्त्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थली,
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता।।

अर्थात् - कोई नवोढ़ा नायिका, शयनगृह को सूना देखकर पलंग (शय्या) से कुछ थोड़ी-सी, धीरे-धीरे उठी और उठकर निद्रा के बहाने लेटे हुए प्रियतम के मुख को बहुत देर तक बड़े ध्यान से देखती रही (कि कही जाग तो नहीं रहे हैं), फिर सोता हुआ समझकर निःशंकभाव से चुम्बन किया, परन्तु छलपूर्वक निद्रा का बहाना बनाये हुए पति की कपोलस्थली को हर्ष से रोमाञ्चित देखकर वह नव-वधू लज्जा से नम्रमुखी हो गई और हँसते हुए प्रियतम ने बहुत देर तक उसका चुम्बन किया।

यहाँ पर नायक 'आलम्बन-विभाव' है सूना घर 'उद्दीपन विभाव है, मुखावलोकन, चुम्बन आदि

'अनुभाव' है, लज्जा, हास आदि 'व्यभिचारी भाव' हैं तथा रति 'स्थायी भाव' है। इन विभावादिकों के द्वारा सहृदय-हृदय में शृंगार-रस' की अभिव्यक्ति हो रही है।

(2) रसाभास विषयक –

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।
शृंगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः।।

अर्थात् - कामातुर भ्रमर, अपनी प्रिया का अनुगमन करता हुआ पुष्परूप एक पात्र में मधु (पुष्परसरूपी मद्य) का पान करने लगा और स्पर्शसुख से आँखों को बन्द कर लेने वाली मृगी को उसका प्रेमी कृष्णसार मृग सींग से धीरे-धीरे खुजलाने लगा।

कुमारसम्भवम् से उद्धृत प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास ने उस समय वर्णन किया है, जब इन्द्र की आज्ञा ने उस समय का वर्णन किया है, जब इन्द्र की आज्ञा से बसन्त को साथ लेकर कामदेव कैलाश पर्वत पर भगवान् शिव की समाधि भंग करने के लिए जा पहुँचा है। वहाँ उसके प्रभाव से मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी कामविह्वल होकर कामक्रीड़ा में संलग्न हो गये हैं। यहाँ पशु-पक्षियों से सम्बद्ध शृगारिक वर्णन किया गया है। अतः यह 'रसाभास' का उदाहरण है।

(3) भाव विषयक –

यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलं,
इंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी।
क्रोधे क्षत्रगणाः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो,
ध्याने विश्वम् असावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः।।

अर्थात् - जिसके सेहरे या शल्क (मछली के ऊपर पाया जाने वाला त्वक् विशेष) के एक किनारे में सम्पूर्ण समुद्र समा गया (मत्स्यावतार), जिसकी पीठ पर अखण्ड-ब्रह्माण्ड आ गया (कूर्मावतार), जिसकी दाढ़ों के बीच पृथ्वी समा गयी (वराहवतार), जिनके नख में दैत्यराज हिरण्यकशिपु समा गया (नृसिंहावतार), जिसके पैर में पृथ्वी और आकाश समा गये (वामनावतार), जिसके क्रोध में क्षत्रिय जाति विलीन हो गयी (परशुरामावतार), जिसके बाणों में दशमुख रावण समा गया (रामावतार), जिसके हाथ में प्रलम्बासुर लीन हो गया (श्रीकृष्णावतार), जिसके ध्यापटल पर सम्पूर्ण विश्व उपस्थित हो गया (बुद्धावतार), तथा जिसके खड्ग में अधर्मियों का लय हो गया (कल्क्यवतार), उस अलौकिक तेज को मेरा नमस्कार है।

प्रस्तुत पद्य में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन किया गया है। भगवद् विषयक 'रति' होने से यह 'भाव' का उदाहरण है।

काव्यभेद

उत्तम (ध्वनि), मध्यम (गुणीभूत व्यंग्य) तथा अधम (चित्र) के भेद से काव्य के तीन विभाग किये गये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

1. उत्तम (ध्वनि) काव्य

जहाँ पर 'वाच्यार्थ' की अपेक्षा 'व्यंग्यार्थ' में अधिक चमत्कार पाया जाता है, उसे 'उत्तम-काव्य' कहा जाता है, इसी को वैयाकरण विद्वानों ने 'ध्वनि' के नाम से अभिहित किया है -

इदमत्तममतिशायिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।

उदाहरण -

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतट निर्मुष्टरागोऽधरो,
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं वपुः।
मिथ्यावादिनि दूति बानधवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।।

अर्थात् - (नायक को बुलाने के लिए प्रेषित, किन्तु नायकोपभुक्त और अपने को बावड़ी (वापी) में स्नान करके आई हुई बताने वाली दूती के प्रति कुपित नायिका की उक्ति है-)

हे दूति! तुम्हारे स्तनों के किनारे पर लगा हुआ चन्दन पूरा छूट गया है, तुम्हारे अधरोष्ठ की लाली (भी) छूट गयी है, तेरी आँखों का काजल भी बिल्कुल पुंछ गया है और तुम्हारा दुर्बल शरीर पुलकित हो रहा है। अरे! अपनी सखी की पीड़ा को न समझने वाली, झूठ बोलने वाली दूति! तू तो बावड़ी में स्नान करने गयी थी उस नीच (नायक) के पास नहीं गयी थी।

यहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारजनक है। प्रधानतया 'अधम' पद के द्वारा इस व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति हो रही है कि तू बावड़ी-स्नान करने नहीं गई थी, अपितु उस अधम के पास सम्भोग के लिए गई थी।

2. मध्यम (गुणीभूतव्यंग्य) काव्य -

जहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार नहीं पाया जाता है, उसे 'मध्यम-काव्य' या 'गुणीभूतव्यंग्य-काव्य' कहते हैं -

अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्।

उदाहरण -

ग्रामतरुणं तरुण्या नवमञ्जुलमंजरीसनाथकरम्।
पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया।।

अर्थात् - वेतसलता की मञ्जरी को हाथ में लिए हुए उस ग्रामीण युवक को देखती हुई उस तरुणी के मुख की कान्ति अत्यन्त मलिन हो रही है।

कोई तरुणी वेतसलता-गृह में गाँव के नवयुवक से मिलने का वायदा करके किसी कार्य में व्यस्त होने के कारण उस संकेतित स्थान पर नहीं पहुँच सकी और वह नवयुव वहाँ पहुँच गया। कुछ समय तक प्रतीक्षा करने के बाद साक्ष्य के रूप में वेतस-लता-मञ्जरी को हाथ में लिये हुए वापस आ गया। अब आत्मग्लानि के कारण वेतसलतामंजरीधारी उस नवयुवक को देखकर उस तरुणी की मुखकान्ति मलिन हो गयी।

यहाँ पर 'वेतस-लता-गृह में मिलने का संकेत दे करके भी नहीं आयी' यह व्यंग्यार्थ गौण हो गया है और इसकी अपेक्षा 'तरुणी की मुखकान्ति का मलिन होना' यह वाच्यार्थ अधिक चमत्कारी है। अर्थात् - नायिका के संकेतभंगरूपी अकर्तव्यता में ही वाच्य की विश्रान्ति हो जाती है। अतः यहाँ पर 'वाच्यार्थ' की अपेक्षा 'व्यंग्यार्थ' गौण हो जाता है। इसलिए इसे गुणीभूतव्यंग्यकाव्य या 'मध्यमकाव्य' कहा जाता है।

3. अधम (चित्र) काव्य -

व्यंग्यार्थ-रहित काव्य, अधम काव्य कहा जाता है। इसी को विद्वानों ने चित्रकाव्य कहा है।

यह शब्दचित्र तथा वाच्यचित्र के भेद से दो प्रकार का होता है -

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्।

उदाहरण -

स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटा-,
मूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाह्निकाय वः।
भद्यादुधदुदार-दर्दुर-दरी-दीर्घादरिद्र-द्रुम-,
द्रोहोद्रेकमहोर्मिमेदुरमदामन्दाकिनी मन्दताम्।।

अर्थात् - स्वच्छन्द रूप से उछलती हुई, किनारों के गड्ढो में अत्यन्त वेगपूर्वक प्रवाहित होने वाली स्वच्छ जलधारा की छटा से विगतमोह वाले महर्षियों के सहर्ष स्नान तथा दैनिक कार्यों को सम्पन्न करने वाली, जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ने वाले मेढकों से भरी बड़ी-बड़ी दरारों से युक्त, बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ फेंकने में समर्थ, ऊपर उठने वाली बड़ी-बड़ी तरंगों से उन्मत्त मन्दाकिनी गंगाजी आप लोगों के पापों को नष्ट करें।

यहाँ पर अनुप्रास-प्रदर्शनमात्र कवि का तात्पर्य होने से व्यंग्य तिरोहित हो गया है। अर्थात् कवि का अभिप्राय केवल शब्द-चित्रण में ही दिखायी देता है। अतः यह शब्दचित्र नामक अधमकाव्य का उदाहरण हैं।

मणिजा नाम के आर्यों की सभ्यता का युग

खुशबू कुमारी

सृष्टि के प्रारम्भ का प्रश्न मनुष्य के मस्तिष्क में प्राचीन काल से लेकर आज तक बना हुआ हैं। इस प्रश्न की खोज में सभी शास्त्रों का जन्म होता चला गया। परन्तु आज भी यह एक गुत्थी बना हुआ है, इसका निवारण करने के लिए वेद विद्या विशारद पं. मधुसूदन ओझा ने वेद शास्त्र के माध्यम से इसका निवारण किया है, जो इस प्रकार है-

सभ्य रूप सृष्टिकाल के प्रथम होने वाले सभ्यता युग की द्वितीय युगता। (वायुपुराण में लेख है कि त्रेतायुग के आरंभ में स्वायंभूव मन्वंतर में देव याम नाम से ख्यात हुए थे, जिन्होंने सर्वप्रथम यज्ञ की उत्पत्ति की थी। यह ब्रह्मा के पुत्र अजीत नाम के थे और जित-जिताजित नाम के पुत्र स्वायम्भुव के थे- ये सब शुक्र नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

ये देवों का एक गण संस्थान था- इनमें तीन गण थे- एक तृप्तिमन्त गण, दूसरा तुषिमन्त गण- यह अति वीर्यशाली बलवान् गण था। तीसरा गण व्रजकुल नाम का था। ये स्वायंभूव मन्वंतर में थे। अयन-वर्ष-युग आदिकाल के क्रम में इन को बहुत समय व्यतीत हो गया- आगे ये सब नष्ट हो गए आदि।) इस पुराणकथन का यहां विश्लेषण किया जा रहा है -

वन्ययुग के अनन्तर द्वितीय युग के प्रारंभ में सभ्यता का जो प्रथम युग माना जाता है उसमें वेद प्रतिपादित यज्ञविज्ञान के सुशिक्षित याम नाम के देवगण पहले के उस आदिकाल में प्रसिद्ध हुए थे- वह स्वायंभूव नाम का मन्वंतर माना गया है- जिस काल में ये याम-देवगण इस पृथ्वी पर अवतरित हुए थे (मानव रूप में)।।1।।

याम-तृप्तिमन्त, त्विषिमन्त और व्रजकुल इन तीनों विधाओं में विभक्त थे, इन में तृप्तिमन्त गण में तीन प्रसिद्ध पुरुष ऐसे हुए जो बारह कलाओं में विकसित होकर तीन के बारह भाव बन गये अथवा गण बन गये ।।2।।

तृप्तिमन्तों में उन तीन के नाम अजितगण, जित-अजितगण और अजितगण। उनमें जितगण विस्तृत होकर द्वादश कलावान् हुए, त्विषिमन्तों का गण सबका शासन करता था, वैश्य वर्ग तथा कार्मिक वर्ग व्रजकुल नाम से प्रसिद्ध थे।।3।।

इस प्रकार यह तीनों विधाओं में विभक्त याम के पुरुषगण अपने कर्म में निष्ठावान् होते हुए, पहले बहुत सम्मानित हुए किंतु बहुत काल के अंतराल में वे सब कालग्रस्त होकर निःशेष हो गए। उनके अनन्तर मणिजा नाम की जाति के महाविद्वान् पुरुष अवतरित हुए, इनका क्रमशः उदय हुआ था।।4।।

मणिजा जाति के मानवों की स्थितिभूमि उत्तर दिशा में हिमालय से उत्तर समुद्र पर्यंत बड़े प्रशस्त रूप में थी। सर्वप्रथम मणिजा का उद्भव चीन प्रदेश में हुआ- वहां से वे इधर-उधर सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये- हिमालय से उत्तर सागर पर्यन्त वास करते हुए ।।5।।

चीन से चलकर इन्होंने उत्तर-पश्चिम दिशा को जीतकर स्वर्ग की नाक शाखा पर्यंत प्रतिष्ठा के साथ निवास बना लिया आकाश मंडल में जो हंस नाम तारा है उससे पश्चिमोत्तर के अंतिम अंश के नमतल में किसी काल से इस उत्तर ध्रुव की स्थिति थी।।6।।

हंस तारा से चतुर्थ अंश में जब ध्रुव था उस काल में मणिजा जाति का उदय हुआ था। उस समय मनुष्यों के निवास की दो प्रकार की स्थिति थी, एक जनसमुदाय वन में निवास करने वालों का था।।7।।

अन्य जन विभाग पुरवासियों का नवीन था, वे नवीन ही मणिजा नाम से प्रशस्त होकर प्रसिद्ध हुए थे। पूर्वोक्त वनवासीगण शिक्षाविहीन, संस्कार विहीन (प्राकृतिक),असभ्य सब भिन्न-भिन्न समूह बनाकर रहते थे ।।8।।

वे वन्य जन प्रायः लूट-खसोट करने वाले आचार विहिन पशु समान वृत्ति के बर्बर नाम के अनार्य ख्यात हुए थे। नवीन जो मणिजा जाति के थे, वे सब सभ्य थे, वे उस प्राचीन काल में सर्वगुण-विशिष्ट आर्य नाम से प्रसिद्ध हुए थे।।9।।

दशम श्लोक का पूर्वार्द्ध त्रुटित है- उत्तरार्द्ध में बताया गया कि वे आर्यजन मर्यादित रूप में अपनी आजीविका चलाते थे, इन बुद्धिमान् जनों ने आजीविका की मर्यादित कल्पना स्वतः की थी। आजीविका के अतिरिक्त अन्य जीवन व्यवहार भी इनके मर्यादित थे।।10।।

विद्यानिधि ज्योतिष

विचारों एवं विकारों का चक्रव्यूह

संकलन : धीरेन्द्र स्वामी

आज जो हमारे जीवन में घटित हो रहा है, वह अतीत में किये गये हमारे कृत्यों का परिणाम हे। भविष्य में जो भी होगा, वह वर्तमान में किये गये कृत्यों का ही परिणाम होगा, अर्थात् हमने जो बोया है, वही तो हमें काटना पड़ता है। अगर काँटे बोये हैं और भविष्य में उनसे उलझना ना पड़े, तो इसके लिये प्रयास किया जा सकता है।

मन में जैसे विचार पनपते हैं, वे हमारे मन को उसी के अनुरूप आन्दोलित करते हैं व प्रेरित करते हैं। शरीर की गतिविधियों के साथ-साथ मनुष्य का व्यक्तित्व भी वैसा ही निर्मित होने लगता है। मन की ऊर्जा जो बाहर की ओर बहने लगती है, उसी प्रवाह का नाम है 'विचार'। हमारी चेतना का बाहर की ओर बहने वाला प्रवाह ही 'विचार' है। मन विचारों की जन्मभूमि है। मनुष्य के मन में जैसे विचार पनपते हैं, उसका आचार व व्यवहार भी वैसा ही हो जाता है।

मनुष्य के मन में दो प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। एक वे जा स्वतः ही उत्पन्न होते हैं। दूसरे वे विचार होते हैं, जो दूसरों से प्राप्त होते हैं। जैसे हम पानी को बिना छाने हानिकारक समझते हैं, तो फिर दूसरों के विचारों को बिना छाने अर्थात् बिना सोचे समझे कैसे अपना सकते हैं?

जब कोई व्यक्ति पड़ौस का कचरा लाकर आपके घर में फैंक दे,त्र तो कैसे आप चिल्ला उठेंगे, गुस्सा करेंगे? लेकिन जब दूसरों द्वारा आपके दिमाग में कचरा भरा जाता है, तब आप उसकी परवाह ही नहीं करते। कोई भी व्यक्ति अपना सुख किसी से बाँटना नहीं चाहता, वही दुःख अकेले भोगना नहीं चाहता। वह उसे तो बाँटना चाहता है। दुनियाँ में हर व्यक्ति कहीं ना कहीं त्रस्त है और अपना दुखड़ा दूसरों के सामने रो रहा है। दूसरा तीसरे के सामने और तीसरा चौथे के सामने। इस प्रकार हम सब एक दूसरे का दुःख बाँट रहे हैं।

आम व्यक्ति सोचता है, कि दूसरों को अपने मन की बात कह लेने से मन हल्का हो जाता है। लेकिन वास्तविकता यह है, कि इस प्रक्रिया में दूसरों के दुःखों का बोझ भी हमारे मन पर आ पड़ता है। किसी और को दुखड़ा सुनाने से वह कम होने के स्थान पर बढ जाता है। जिस प्रकार पानी छानकर न पीने से अन्य जीवों की हिंसा होती है, उसी प्रकार पानी छानकर न पीने से अन्य जीवों की हिंसा होती है, उसी प्रकार बिना सोचे समझे दूसरों के विचारों को ग्रहण करना आपके लिए घातक हो सकता है।

जैसा आपका चिन्तन होगा, वैसा ही आपका जीवन होगा। विचार तो सत्योन्मुखी, शिवोन्मुखी, सौन्दर्योमुखी कैसे भी हो सकते हैं। कोई भी व्यक्ति जब दान देता है, तो परमात्मा के नाम पर दान देता है और वही व्यक्ति दूध में पानी मिलाकर ग्राहक को ठगता है, उस समय परमात्मा को भूल जाता है। वास्तव में उसे दान देते वक्त परमात्मा की नहीं अपनी प्रतिष्ठा की फिक्र रहती है।

आम आदमी की विचारधारा के तीन मुख्य केन्द्र बिन्दु हैं, तीन धुरियाँ हैंः–

(1) पैसे की चाहत :

प्रायः व्यक्ति दिन-रात धन-दौलत के बारे में ही विचार करता रहता है। अगर वह धार्मिक भी बनना चाहता है, तो कहीं ना कहीं उसके विचारों में धनिक बनने की चाहत रहती हे। अगर वह मन्दिर भी जाता है, तो भगवान से धन की माँग करने के लिये। किसी सत्संग में या धर्मोपदेश सुनने जाता है, तब भी मन में दौलत पाने या फिर उसे बढाने का विचार घूमता रहता है। जीवन का अधिकांश समय अधिक से अधिक धन कमाने व सम्पत्ति बनाने में व्यतीत हो जाता है।

(2) नाम की चाहत :

विचारधारा का दूसरा केन्द्र होता है, यश, कीर्ति व प्रतिष्ठा। नाम कमाने के लिये वह हर तरह के पापड़ बेलने को तत्पर रहता है। उसके लिये लाखों खर्च कर देता है। नाम और सम्मान दो प्रकार के होते हैं। एक वह जो हम लोगों से कहकर लेते हैं, दूसरा वह जो हमारे प्रति लोगों के दिलों में रहता है। आजकल व्यक्ति अपने पास से धन की थैली किसी को सौंपने के लिये, चाहे वह किसी धर्मशाला के निर्माण हेतु हो, विद्यालय भवन बनवाने हेतु हो अथवा कोई अन्य आयोजन हो, वह सम्मान समारोह आयोजित करवाता है। इस प्रकार वह अपने अहंकार की तुष्टि करवाता है।

(3) भोग की चाहत :

तीसरा व मुख्य केन्द्र बिन्दु है भोग-परिभोग का। सामाजिक मर्यादाओं के चलते, चेतन में अभिव्यक्त हो ना हो, अवचेतन मन में सतत् 'काम' से संबंधित विचार अक्सर चलते रहते हैं। परिणामस्वरूप हमारे क्रियाकलाप इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते।

अतः दाम, नाम और काम। ये तीन मूल केन्द्र बिन्दु हैं, हमारे सोच के जिनमें हम जीते हैं। अब अगर हमारी सोच में ही विकार है, तो फिर परिणाम भी तो उसी के अनुरूप होंगे। अगर हमारी सोच याा विचार सकारात्मक हैं, तो हम अपने जीवन की हर कठिनाई से उबर सकते हैं। अतः निर्णय हमें करना है।

आजकल विचारों को विकृत करने में दूरदर्शन व सिनेमा के साथ-साथ इन्टरनेट का भी योगदान

कम नहीं है, जहाँ ऐसी सामग्री परोसी जा रही है, जो युवाओं के साथ-साथ बच्चों के विचारों को भी विकृत कर रही है।

नज़र रखो अपने 'विचारों' पर, क्योंकि ये 'शब्न बनते हैं।
नज़र रखो अपने 'शब्दों' पर, क्योंकि ये 'कार्य' बनते हैं।
नज़र रखो अपने 'कार्यों' पर, क्योंकि ये 'स्वभाव' बनते हैं।
नज़र रखो अपने 'स्वभाव' पर, क्योंकि ये 'आदत' बनती है।
नज़र रखो अपनी 'आदतों' पर, क्योंकि यही 'चरित्र' बनती हैं।
नज़र रखो अपने 'चरित्र' पर क्योंकि यही जीवन का 'आदर्श' बनता है।

आओ दुआएँ लेते चलें

करतार योगी

आओ दुआएँ लेते चलें, आओ दुआएँ देते चलें।
सब अपने हो जायेंगे, प्रेम की हवाएँ बहाते चलें।।

सबसे आसान यदि कुछ है तो उसे दुआ कहते हैं क्योंकि दुआओं के आदान-प्रदान में एक भी पैसा खर्च नही होता है, शक्ति और समय भी खर्च नही होता है। बावजूद इसके दुआओं के आदान-प्रदान से बहुत सारे अवरोध खड़े दिखाई दे रहे हैं। जब शिशु के रूप में व्यक्ति इस दुनिया में आता है तो उस समय वह सबसे बेहतरीन होता है, सर्वश्रेष्ठ, सर्वसुलभ और एक हंसता-खिलता संसार होता है। उसको सब अपनी दुआएँ देते हैं, अपनापन और प्यार देते हैं। लेकिन वह जैसे-जैसे उम्र के पायदानों की चढ़ाई शुरु करता है, वैसे-वैसे उसके मन-मस्तिष्क में उसके माता-पिता, परिजन, पिरचित, सगा-सम्बन्धी और मित्रगण अपनी-अपनी राय, विचार, अनुभव, सपने, लक्ष्य, रूढियां-परम्पराऐं, स्वार्थ, प्रभाव, स्वभाव और शक्ति उसके कोमल मस्तिष्क में भरनी शुरु कर देते हैं।

यही मूल कारण है कि उसके कोमल और पवित्र मन मस्तिष्क में झूठ-फरेब और सामाजिक विद्रुपताएँ घर करने लगती हैं और एक समय ऐसा आता है कि सभी खराब बातों का उसके मन-मस्तिष्क में स्थायी निवास हो जाता है, वे सब बातें वहाँ से हटाए भी नहीं हटती हैं, ऐसे में उसके आस-पास दुआओं के आदान-प्रदान का नामो निशान तक नहीं होता। कहा जाता है कि जहां दुआएं होती हैं, वहाँ जिंदगी भर दवाओं का काम नहीं पड़ता क्योंकि दुआओं में पूरे ब्रह्माण्ड की शक्ति होती है, दुआओं से जो सकारात्मक ऊर्जा का संचरण और संवाहन होता है वह व्यक्ति में उपस्थित मानवीय दुर्बलताओं और विद्रुपताओं को हटाकर सच्चाई-अच्छाई, ईमानदारी और इंसानियत की शाश्वतता भर देता है। आइए, जीवन को विशाल खुशहाल और हजारों साल और सबके लिए महनीय बनाने के लिए दुआएँ देते चलें और दुआएँ लेते चलें।

दुआ जिसकी ज़िंदगी का सार हो गया।
समझो कि ऐसा व्यक्ति संसार हो गया।।

साहित्यकार, मोटिवेशनल स्पीकर,
जयपुर

वैशेषिकसम्मत भक्ति मीमांसा

विनोद

प्रायः सभी दर्शनों के आकर ग्रन्थों में ज्ञानमीमांसा ओर तत्त्वमीमांसा के साथ-साथ किसी-न-किसी रूप में आचार को विवेचन भी अन्तर्निहित रहता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सम्यक् विवेक के साथ जीवन में सन्तुलित कार्य करना ही आचार है। यही कारण है कि प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति कभी-न-कभी यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि जीवन क्या हैं? संसार क्या है? संसार से उसका संयोग या वियोग कैसे और क्यों होता है? क्या कोई ऐसी शक्ति है, जो उसका नियन्त्रण कर रही है? क्या मनुष्य जो कुछ है उसमें वह कोई परिवर्तन ला सकता है? व्यष्टि और समष्टि में क्या अन्तर या सम्बन्ध है? एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों या जगत् के प्रति क्या कर्तव्य है? ये और कई अन्य ऐसे प्रश्न हैं जो एक ओर रहस्यमयी पारलौकिकता को और दूसरी ओर समाज और व्यावहारिक जगत् की दृश्यमान ऐहलौकिकता को स्पर्श करते हैं। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि जो प्रयत्न-श्रृंखला सार्थक और सम्यक् उद्देश्य की पूर्ति के लिए दृष्ट को अदृष्ट के साथ या दृष्ट को दृष्ट के साथ जोड़ती है, वह लौकिक क्षेत्र में आचार कहलाती है। सभी भारतीय आस्तिक दर्शनों में आचार के प्रमुख स्त्रोत वेद माने जाते हैं। वैशेष्णिकों ने आचारपक्ष पर कोई सीधा विशेषण प्रस्तुत नहीं किया। अतः वैशेषिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र जो कतिपय संकेत उपलब्ध होते हैं, उनके आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि वैशेषिकों का आचारपरक दृष्टिकोण भी वेदमूलक ही है। इस धारणा की पुष्टि महर्षि कणाद के इन कथनों से हो जाती है कि - लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस तत्त्वज्ञानजन्य है, तत्त्वज्ञान धर्मजन्य है, और धर्म का प्रतिपादक होने और ईश्वरोक्त होने के कारण वेद ही धर्म का प्रमाण है।

वैशेषिक भक्तिसंहिता के घटक

1. **धर्माधर्मविवेक**

वैशेषिक की आचारपरक मान्यताओं के तीन प्रमुख आधार हैं। वैशेषिकों की आचार परक विचारधारा का केन्द्रबिन्दु यह मान्यता है कि सुख का त्याग मोक्षमार्ग की एक प्रमुख इतिकर्तव्यता है। सुख भी अन्तः दुःखरूप ही है और दुःख से छुटकारा ही मोक्ष है। वैशेषिक दर्शन के पहले चार सूत्रों से ही इस बात की पुष्टि होती है कि वैशेषिक की मान्यताओं के साथ धर्म का अनिवार्य सम्बन्ध है। गुणों की गणना में भी धर्म और अधर्म के समावेश से यह स्पष्ट होता है कि जीवात्मा धर्म और अधर्म

आदि विशेष गुणों से युक्त है। अन्नंभट्ट के अनुसार विहित कर्मों से जन्य अदृष्ट धर्म और निषिद्ध कर्मों से जन्य अदृष्ट अधर्म कहलाता है। कतिपय विद्वानों का यह कथन है कि धर्म और अधर्म शब्द सत्कर्म या असत्कर्म के नहीं, अपि तु पुण्य और पाप के बोधक हैं, जो सत्कर्म और असत्कर्म के फल हैं।

शब्द को पृथक् प्रमाण न मानते हुए भी वैशेषिकों ने धर्म के विषय में वेद को ही प्रमाण माना है। वैशेषिक की साधना-पद्धति क्या थी? इस संदर्भ में कतिपय विद्वानों का यह मत है कि वह प्रायः उन दर्शनों से मिलती-जुलती है जो आत्मसंयम या सत्त्वशुद्धि को आचार की प्रमुख विधि मानते हैं । राग-द्वेष, जिस प्रवृत्ति को जन्म देते हैं, वह दुःख और सुख का कारण बनकर फिर राग-द्वेष को जन्म देती है और इस प्रकार से एक दुश्चक्र सा चलता रहता है। उसको यम, नियम आदि रोक लें तो जीवन अपने सर्वोच्च लक्ष्य (मुक्ति) की प्राप्ति करवाने वाले मार्ग का अनुसरण कर सकता है।

वैशेषिकों की दृष्टि में सुख और दुःख एक दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं कि दुःख से बचने के लिए सुख का भी त्याग आवश्यक है। सुख की तरह दुःख भी आत्मा का एक आगन्तुक गुण है। उसके विनाश से आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मोक्ष की स्थिति में आत्मा का दुःख-सुखसहित सभी आगन्तुक गुणों से छुटकारा हो जाता है। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि महात्मा बुद्ध का उपदेश यह था कि सुख, दुःख या स्वार्थपरता से छुटकारा तब तक सम्भव नहीं है, जब तक आत्मा की नित्य सत्ता में विश्वास करना नहीं छुट जाता। बौद्धों के इस सिद्धान्त के विपरीत वैशेषिक आत्मा को नित्य मानते हैं, किन्तु उनकी यह मान्यता है कि सुख-दुःख से छुटकारा और जीवन का अन्तिम ध्येय (मोक्ष) तब तक प्राप्त नहीं होता, जब तक यह न मालूम हो जाय कि आत्मा सभी अनुभवों से परे है।

2. ईश्वर

मोक्ष का सम्बन्ध जीवात्मा से है और जीवात्मा का परमात्मा या ईश्वर से है। वैशेषिकों के अनुसार आत्मा के दो प्रकार हैं - जीवात्मा और परमात्मा। परमात्मा को ही ईश्वर कहा जाता है। वैशेषिकसूत्र में ईश्वर का उल्लेख नहीं है, किन्तु तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'। इस सूत्र में ईश्वर की झलक मिलती है। अतः उत्तरवर्ती भाष्यकारों ने यह कहा कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के नित्य परमाणुओं से ईश्वर सृष्टि का निर्माण ब्रह्माण्डकुलाल के रूप में कुम्भकार की तरह करता है। वह सृष्टि का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। वह मकड़ी की तरह अपने भीतर से नहीं करता, अपि तु परमाणुओं से सृष्टि की रचना करता है। परमाणु अचेतन हैं, अतः वे स्तन्त्रतया विश्व को धारण करने में असमर्थ हैं। जीवात्मा में कर्म करने की जो शक्ति रहती है, वह भी उसे ईश्वर से ही प्राप्त होती है। ईश्वर का कोई शरीर नहीं। किन्तु शरीर न होने पर भी वह इच्छा, ज्ञान और प्रयत्न इन तीनों गुणों से युक्त है।

वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा कर्मफल का दाता है। कार्य करने में जीव स्वतंत्र है, पर उनका फल ईश्वर के हाथ में ही है। वात्स्यायन के अनुसार विशिष्ट आत्मा ही ईश्वर है। जीवात्मा में भी यह गुण है, पर वे अनित्य हैं जबकि ईश्वर में नित्य हैं। उदयनाचार्य ने ईश्वर की सिद्धि के लिये निम्नालिखित आठ तर्क प्रस्तुत किये हैं - (1) जगत् कार्य है, उसका कोई निमित्त कारण होना चाहिए, वह कारण ईश्वर है, (2) ईश्वर के बिना अदृष्ट परमाणुओं में गति संचार नहीं हो सकता, (3) जगत् (परमाणुओं) का धारक भी कोई होना चाहिए, वह ईश्वर है, (4) पदों में अर्थ को व्यक्त करने की शक्ति भी ईश्वर से ही आती है, (5) वेदों को देखकर उनके प्रवक्ता ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित होता है, (6) श्रुति ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करती है, (7) वेदवाक्य पौरुषेय हैं और वेदकर्ता पुरुषविशेष ही ईश्वर है, (8) द्वित्वादि संख्या के संदर्भ में अपेक्षाबुद्धि का आश्रय भी परिशेषानुमान से ईश्वर ही सिद्ध होता है।

3. मोक्ष

वैशेषिक दर्शन के अनुसार जीवात्मा के दुःखों का पूर्ण निरोध ही मुक्ति है। वैशेषिकों ने भी आत्मा के दो भेद माने जाते है -जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा के गुण अनित्य और परमात्मा के नित्य होते हैं। अक्षपाद गौतम के अनुसार दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति ही मोक्ष (अपवर्ग) है। जन्म का विनाश और पुनर्जन्म का न होना ही आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति है। प्रशस्तपाद ने यह बताया कि पूर्वशरीर का कर्म के क्षय से नाश हो जाता है और धर्माधर्म रूप कारण के न रहने से आगे सिी शरीर की उत्पत्ति नहीं होती, तो आत्मका की यही अवस्था मोक्ष कहलाती है। न्यायलीलावतीकार वल्लभाचार्य ने न्यायसूत्रकार गौतम के कथन को लगभग तदवत् निवृत्ति ही मोक्ष है। श्रीधर ने यह भी स्पष्ट किया कि मोक्षावस्था में आत्मा अशरीरी होता है, उस अवस्था में आत्मा को सुख और दुःख स्पर्श नहीं करते, क्योंकि मोक्षावस्था में सुख-दुःख का सर्वथा अभाव होता है। अहित की निवृत्ति जीवात्मा के विशेष गुणे के उच्छेद से होती है। विशेष गुणों के उच्छेद के साथ ही शरीर का भी नाश होता है। श्रीधर मोक्षावस्था में सुख की अवस्थिति मानी जायेगी तो राग का अस्तित्व भी मानना होगा और यदि राग होता तो द्वेष भी होगा ही। सूत्रकार कणाद पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य रूप तत्त्वज्ञान को निःश्रेयस (मोक्ष) का कारण बताते हैं। श्रीधर धर्म को निःश्रेयस का साधन मानते हैं और तत्त्वज्ञान को धर्मज्ञान का कारण। इस प्रकार तत्त्वज्ञान, परम्परा से मोक्ष का साधन है।

मोक्षज्ञान कर्म के समुच्चय से होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं- काम्य, नित्य और नैमित्तिक। उनमें से काम्य कर्म का त्याग आवश्यक है। नित्य-नैमित्तिक कर्मों के द्वारा प्रत्यवायों का क्षय होता है और विमल ज्ञान उत्पन्न होता है। अभ्यास द्वारा विमल ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर व्यक्ति को मोक्ष

प्राप्त होता है।

दिनकरीकार ने यह मत व्यक्त किया है कि कुछ नव्य नैयायिक यह मानते हैं कि दुःखध्वंस से नहीं, अपि तु दुःख के कारणभूत दुरित का ध्वंस होने से मुक्ति होती है। नैयायिकों के अनुसार सुख भी प्रकार का दुःख ही है, इसलिए इक्कीस प्रकार के दुःखों में सुख का भी परिणगन किया गया है।

वैशेषिक दर्शन के मोक्षसम्बन्धी चिन्तन का निरूपण शंकरमिश्र ने इस प्रकार किया है कि भाग से पूर्वोत्पन्न धर्म-अधर्म का क्षय हो जाता है। निवृत्तदोष व्यक्ति द्वारा धर्माधर्म का पुनः संचय न करने के कारण उसको दूसरा शरीर नहीं ग्रहण करना पड़ता। इस प्रकार पूर्व शरीर से जीवात्मा के संयोग का जो अभाव होता है, वही मुक्ति है और वही वैशेषिकों की आचारपरक क्रियाओं का अन्तिम रूप से अवाप्तव्य है।

नीम का पेड़

नवीन जोशी

उस पंचायती नीम के पेड़ की आदत खूब थी,
जहाँ वकील-जज अपने वो अदालत खूब थी।
जिसके चारों और दिनभर जमघट रहता था,
वह पेड़ गाँव की लज्जा का घूघंट लगता था।
उस पर जंगली कबूतरों के जगमगाते घोंसले थे,
उसके नीचें इंसाफ की जीत सच के हौंसले थे।
वहाँ अमीर की ख़बर गरीब की हिफाजत खूब थी।

उस पंचायती नीम के पेड़ की आदत खूब थी।
वो ताश खेलनें वालों की आवाजें टकराती थी,
तब सारे गम छिप जाते जब यारी मुस्काती थी।
उन दिनों तो वहाँ हर रोज ही मेला लगता था,
जब खिलखिलाते सावन में झूला लगता था।
वो बूआ के हिण्डोलें देने की नजाकत खूब थी।

उस पंचायती नीम के पेड़ की आदत खूब थी।
उनके आगे सब शानोशौकत-आराम झूठे जाते थे,
उस के नींचे निशाना लगा खूब कंचे लूटे जाते थे।
कुछ ज्ञान की बातें होती कुछ झूठी फेंका करते थे,
वहाँ बैठ बुजुर्ग दूसरे की घरवाली देखा करते थे।
दादाओं पर नखरीली दादीयों की कयामत खूब थी।

वो पंचायती नीम के पेड़ की आदत खूब थी।

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
"अन्ताराष्ट्रिय वैदिक संस्कृति व्याख्यान माला" के व्याख्यानों का विवरण

क्र. स.	प्रस्तोता	विषय	दिनांक
1.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेद का स्वरुप	9-12-18
2.	प्रो. अन्नत शर्मा	वैदिक संस्कृति की व्याख्या	16-12-18
3.	प्रो. अन्नत शर्मा	अश्वमेघ यज्ञ विषयक	23-12-18
4.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेद पुराणो के मूल सिद्धान्त	6-1-19
5.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेद का धर्म	17-2-19
6.	प्रो. अन्नत शर्मा	श्रद्धा का स्वरुप	24-2-19
7.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेद ओर वेदांग	3-3-19
8.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेद के प्रकार	10-3-19
9.	प्रो. अन्नत शर्मा	लोको की व्याख्या	17-3-19
10.	प्रो. अन्नत शर्मा	इतिहास ओर पुराण	24-3-19
11.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेद ओर वेदांग	31-3-19
12.	प्रो. अन्नत शर्मा	हरिः शब्द अनेकार्थ स्पष्ट किये	14-4-19
13.	डॉ कलानाथ शास्त्री	भाषा की त्रुटियो पर व्याख्या	21-4-19
14.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेदत्रयी पर विशिष्ट व्याख्यान	21-4-19
15.	प्रो. अन्नत शर्मा	ब्रह्म का स्वरुप	28-4-19
16.	प्रो. अन्नत शर्मा	ब्रह्मतत्व की व्याख्या	5-5-19
17.	डॉ रामदेव साहू	कुण्डली निर्माण	5-5-19
18.	प्रो. अन्नत शर्मा	पुराण विषयक	12-5-19
19.	प्रो. अन्नत शर्मा	शब्द वेद के स्वरुप	19-5-19
20.	प्रो. अन्नत शर्मा	पुराण वेद है या नहीं	26-5-19

21.	प्रो. अन्नत शर्मा	पितामह भीष्म(प्रमाण-पत्र वितरण)	5-6-19
22.	प्रो. अन्नत शर्मा	पितामह भीष्म	9-6-19
23.	प्रो. अन्नत शर्मा	भीष्म के उपदेश युक्त पर्व	16-6-19
24.	प्रो. अन्नत शर्मा	पितामह भीष्म (प्रश्नोतरि)	23-6-19
25.	प्रो. अन्नत शर्मा	पितामह भीष्म	30-6-19
26.	प्रो. अन्नत शर्मा	भीष्म और परसुराम युद्ध की व्याख्या	7-7-19
27.	प्रो. अन्नत शर्मा	पितामह भीष्म	14-7-19
28.	प्रो. अन्नत शर्मा	ब्रह्मा के दिन	28-7-19
29.	प्रो. अन्नत शर्मा	द्रोण- भीष्म की आयु का वर्णन	11-8-19
30.	प्रो. अन्नत शर्मा	वैदिक संस्कृति	18-8-19
31.	प्रो. अन्नत शर्मा	वैदिक संस्कृति	25-8-19
32.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेदांग विषयक	01-09-19
33.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेदांग	15-9-19
34.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेद धर्म है वेदांग व्याकरण	22-09-19
35.	प्रो. अन्नत शर्मा	महर्षि वाल्मीकि संगोष्ठी	13-10-19
36.	प्रो. अन्नत शर्मा	वेदिक कोष	20-10-19
37.	प्रो. अन्नत शर्मा	अहं वेदः अस्मि, त्वं वेदः अस्मि ।	17-11-19
38	प्रो. अन्नत शर्मा	महाकवि कुलगुरु कालिदास	01/12/19
39	प्रो. अन्नत शर्मा	गीता जयन्ती	08/12/19
40	प्रो. अन्नत शर्मा	गीता जयन्ती	15-12-19

21 दिवसीय ज्योतिष एवं वास्तु प्रशिक्षण शिविर के उद्घाटन समारोह की कुछ झलकियाँ

प्रकाशक : **विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान,** कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर
Mail Id. : vishwagurudeepashram@gmail.com • jaipur@yogaindailylife.org
Website : https://www.vgda.in • Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram

Narayan